योग–विज्ञान का दार्शनिक पक्ष

श्याम शंकर उपाध्याय
पूर्व जनपद एवं सत्र न्यायाधीश/
पूर्व विधिक परामर्शदाता मा0 राज्यपाल
उत्तर प्रदेश, राजभवन
लखनऊ।
मो0- 9453048988
ई-मेलः ssupadhyay28@gmail.com

1. मानव मन की खोजी एवं सहज जिज्ञासु प्रकृति ने जिस अध्यात्म विज्ञान का सृजन किया है उसे 'योग' कहते हैं । मॉ के गर्भ में प्रथम स्पन्दन से ही शिशु जिज्ञासा के वशीभूत होकर मां के प्रत्येक कार्यकलाप, विचार आदि का ज्ञान प्राप्त करने के लिए अपने को स्व (आत्म) से जोड़ता है । मॉ जो परमात्म तत्व की संवाहक एवं शिशु जो आत्म तत्व का संवाहक है, दोनों के एक दूसरे से जुड़ने की क्रिया से ही 'योग' की उत्पत्ति होती है । संस्कृत भाषा में योग शब्द की उत्पत्ति 'युज्' धातु से मानी जाती है जिसका अर्थ है जोड़ना । दूसरे अर्थों में आत्मा का परमात्मा से मिलन ही योग है । प्रश्न उठता है कि आत्मा कौन है, परमात्मा कौन है ? परमात्मा इस सृष्टि का रचयिता, पालक, पोषक एवं नियंत्रक है । यह परमात्मा निराकार, निर्विकल्प, आनन्द एवं अनन्त ऊर्जा स्वरूप है । भारतीय दर्शन में योग पर वृहद् चर्चा हुई है । 'युज्' धातु का अर्थ 'समाधि' से भी है। अतएव योग शब्द का वास्तविक अर्थ समझने के लिए समाधि शब्द का भी वास्तविक अर्थ समझना आवश्यक है। 'समाधि' शब्द का अर्थ है–सम्यक् प्रकार से परमात्मा के साथ युक्त हो जाना, मिल जाना, जीव का कामना, वासना, संस्कार आदि सब प्रकार की आगन्तुक मलीनता को दूरकर अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होकर परमात्मा में मिल जाना । परमात्मा से युक्त होने का सहज, सुन्दर, स्वाभाविक उपाय भी समाधि में समाहित है । भौतिक रूप से देखें तो परमात्मा वायु की तरह सर्वव्यापक निराकार ऊर्जा रूप है । जब इस वायु का स्पर्श शरीर से होता है तब हमें वायु की उपस्थिति का आभास होता है। वायु को जब विशेष वैज्ञानिक क्रिया द्वारा विघटित किया जाता है तो उसके अलग–अलग अंग गैसों के साकार रूप में दिखलायी देते हैं । ठीक इसी तरह जब परमात्मा अपनी मनः संकल्प शक्ति की क्रिया द्वारा सृष्टि की रचना करता है तो जड़, चेतन, जैव–अजैव, पशु, पक्षी, वृक्ष आदि विभिन्न संरचनाओं के रूप में साकार हो उठता है । जीव–जन्तुओं, पशु–पक्षियों, पर्वत–नदियों आदि के रूप में परमात्मा का यह अंश साकार रूप में विभिन्न रंगरूप, गुण–धर्म के माध्यम से दिखायी पड़ता है । यह सीमित एवं विविधता सम्पन्न रूप जीवात्मा कहलाता है । शरीर से आत्मा जब मुक्त होती है तब यह शरीर शव कहलाता है । मुक्त चेतना (ऊर्जा) आत्मा कहलाती है । यही मुक्त आत्मा ठीक उसी तरह से परमात्मा में मिल जाती है जिस प्रकार जल की बूँद जल की मूल राशि में विलीन हो जाती है और तब बूँद और जल–राशि का भेद समाप्त हो जाता है । आत्मा और परमात्मा के मिलन की यह अवस्था ही योग की अवस्था है ।

2. 'ईशावास्योपनिषद्' में कहा गया है **'सर्वंखल्वमिदंब्रह्म यद् किंचित्जगत्याम्जगति'** जिसका तात्पर्य है कि सम्पूर्ण जगत में जो कुछ भी है उन सब में ब्रह्म विद्यमान है अथवा वह ब्रह्ममय है। इस सिद्धान्त के अनुसार प्रत्येक जीव अव्यक्त ब्रह्म है और इसी ब्रह्म का साक्षात्कार करने की कलात्मक दर्शन–पद्धति को 'योग दर्शन' कहा जाता है । स्वामी विवेकानन्द के अनुसार बाह्य एवं अन्तर प्रकृति को वशीभूत एवं अन्तःस्थ करके ही ब्रह्म भाव को प्राप्त किया जा सकता है और ब्रह्म भाव को व्यक्त करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है । इस प्रकार अव्यक्त ब्रह्म का प्रकटीकरण करने के लिए जिस वैज्ञानिक प्रक्रिया का सहारा लिया जाता है उसे 'योग विज्ञान' के रूप में जाना जाता है । दूसरे शब्दों में योग जीवित शरीर के अनुसन्धान का विज्ञान है । यह मृत शरीर के विच्छेदन (post mortem) पर आधारित नहीं है अपितु यह स्वतः अपने ही जीवित शरीर पर सूक्ष्म दृष्टि के द्वारा खोजे गये अटल शाश्वत सत्य पर आधारित है । योग विज्ञान में व्यक्ति अपनी संवेदनाओं पर नियंत्रण करने की प्रक्रिया सीखता है । जब मन नियंत्रित हो जाता है तो व्यक्ति के द्वारा अपने मन को अन्तर्मुखी करते हुए विभिन्न अंगों की क्रियाविधि का अध्ययन किया जाता है । अध्ययन की इस प्रक्रिया में शरीर में स्थित चेतना द्वारा यह देखा जाता है कि अंगों, ऊतकों, कोशिकाओं अथवा जीवित शरीर की सूक्ष्मतम् ईकाई में प्रवाहित शक्ति कहॉ है, कैसी है, कैसे प्रवाहित होती है और इसका लक्ष्य क्या है । चेतना अपनी दृश्य–शक्ति के द्वारा विश्लेषण कर सिद्धान्तों को निरूपित करती है । विश्लेषण के पश्चात वह अन्तः प्रज्ञा से विश्लेषण के द्वारा प्राप्त सिद्धान्तों का एकीकरण कर एक सर्वमान्य सत्य की खोज करती है । यह सत्य ही उसके आभा मण्डल के रूप में विकसित होकर समस्त भूत समुदाय (भौतिक संसार) से एकीकार होता है । इस प्रकार जीव में स्थित ब्रह्म को 'व्यक्त ब्रह्म' के रूप में प्रकट करने की प्रक्रिया को 'योग' कहते हैं । वेदों में **'यत् पिण्डे तत् ब्रह्माण्डे, यत् ब्रह्माण्डे तत् पिण्डे'** कहा गया है जिसका तात्पर्य है कि ब्रम्हाण्ड के किसी एक पिण्ड अथवा उसके एक कण में जो अविनाशी शाश्वत तत्व विद्यमान है वही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भी सर्वत्र विद्यमान है और इसी को साकार करने की क्रिया अथवा विज्ञान को 'योग' कहा जाता है ।

3. औसत संसारी व्यक्ति को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए 'गीता' के अध्याय 6 में दिया गया नितान्त व्यावहारिक व सरल सूत्र इस प्रकार है **''युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु, युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा''** जिसका अर्थ है ''जो व्यक्ति उचित आहार लेने व विहार (दिनचर्या एवं आमोद–प्रमोद) सम्पन्न करने में नियमित रहता है, अपने कार्य को चेष्टापूर्वक अर्थात् मनोयोग पूर्वक करता है, सोने व जागने में नियमित रहता है अर्थात् समुचित नींद लेने के बाद समय से जाग जाता है तो यही क्रियाएं अथवा दिनचर्या उस व्यक्ति के लिए शारीरिक व मानसिक कष्टों को समाप्त करने वाले योग की भांति हो जाती हैं''। योग और कर्म के बीच सम्बन्ध को गीता में **''योगः कर्मसु कौशलम्''** कहा गया है जिसका तात्पर्य है कि मनुष्य को अपना कार्य अपनी पूरी कुशलता/क्षमता के साथ मनोयोगपूर्वक करना चाहिए अन्यथा नापसन्द व अरुचिकर मानते हुए भी बिना मनोयोग के कार्य करने पर न केवल कार्य की गुणवत्ता अपूर्ण व दोषपूर्ण रहेगी अपितु अपने ही मन अर्थात् सूक्ष्म शरीर के विरुद्ध जाकर किसी विवशतावश कार्य करने की दशा में स्थूल शरीर व सूक्ष्म शरीर (मन) के बीच अन्तर्द्वन्द्व उत्पन्न होने के फलस्वरूप स्थूल शरीर सहित सूक्ष्म शरीर अर्थात् मानसिक स्वास्थ्य पर भी प्रतिकूल प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी होगा ।

4. विभिन्न मनीषियों द्वारा विभिन्न कालखण्डों में ''योग'' की परिभाषा निम्न प्रकार की गयी है : (1) योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (पतंजलि योगसूत्र, अध्याय 1, सूत्र 2) चित्त की वृत्तियों अर्थात् विषयों का नियंत्रण ही योग है ।

(2) दुःख संयोगवियोगम योग संज्ञितम् (गीता, अध्याय 6, श्लोक 23) : जो दुःखरूप संसार के संयोग से रहित है उसका नाम योग है ।

(3) संयोग योगयुक्तो इति युक्तो जीवात्मा परमात्नो (महर्षि याज्ञवल्क्य) : जीवात्मा और परमात्मा के मिलन को ही योग कहते हैं ।

(4) श्रद्धा, भक्ति, ध्यान योगादवेहि (कैवल्योपनिषद) : श्रद्धा, भक्ति, ध्यान के द्वारा आत्मा का ज्ञान ही योग है ।

(5) योगः कर्मशु कौशलम् (गीता, अध्याय 2, श्लोक 50) : कर्मों में कुशलता ही योग है ।

(6) समत्वं योग उच्यते (गीता, अध्याय 2, श्लोक 48) : समत्व की स्थिति में रहना ही योग है जिसका अर्थ है कि सुख–दुःख, हानि–लाभ, सफलता–असफलता जैसी विपरीत परिस्थितियों में सम्भाव से रहते हुए निश्काम भाव से कर्मरत रहना ही योग है ।

(7) मनः प्रशमनोपायो योग इत्यभिधीयते (महोपनिषद) : मन के प्रशमन (शान्त रखने) के उपाय को योग कहते हैं ।

(8) योगः संयोग इत्यक्तः जीवात्मा परमात्मनो (विष्णु पुराण) : जीवात्मा तथा परमात्मा का पूर्ण मिल नही योग है ।

5. विश्व के प्राचीनतम ज्ञान ग्रन्थ 'ऋग्वेद' में योग का उल्लेख इस प्रकार आया है : **''यस्मादृते न सिद्धयति यज्ञो विपश्चितश्चन, स धीमाम् योगमिन्वति** ।'' **(ऋक्संहिता, मण्डल 1, सूक्त 18, मंत्र 7)** जिसका अर्थ है कि योग के बिना विद्वान का कोई भी यज्ञ सिद्ध नहीं होता, वह योग क्या है–चित्त की वृत्तियों का निरोध है, वह कर्तव्य कर्म मात्र में व्याप्त है । ऋग्वेद में जागृत बुद्धि की चर्चा है यथा **''यो जागार तम् ऋचा कामयन्ते''** अर्थात् जो जागा हुआ है, ऋचाएं उसकी कामना करती हैं । (ऋग्वेद 5.44.14) । ऋग्वेद के अनुसार जागे बिना ऋचाओं को नहीं देखा जा सकता है । ऋचाओं को देखे बिना सत्य की प्राप्ति असंभव है । सत्य की प्राप्ति के लिए मन (चित्त) को नियंत्रित करना होगा । मन को नियंत्रित कर अपने शरीर में स्थित चेतना को जागृत करके ब्रह्माण्डीय चेतना से जुड़ना होगा । जब हमारी अन्तः चेतना ब्रह्माण्डीय चेतना से एकीकार होगी तभी सत्य की प्राप्ति होगी । सत्य की प्राप्ति हेतु मन को दक्ष बनाना होगा––''**सम् दक्षेण मनसा जायते''** । सत्य का बोध दक्ष मन से होता है, मन को स्थिर कर दक्षता प्राप्त करने से 'योग स्थिति' की प्राप्ति की जा सकती है । ऋग्वेद में इन्द्र के लिए कहा गया है ––''हे इन्द्र ! आपने जन्मते ही मन स्थिर किया'' (5.43.04) । मन की चंचलता उसका स्वभाव है, स्थिर चित्त (मन) योग की उपलब्धि है । ऋग्वेद में उल्लेख है ''आपका मन हमारी ओर हो'' (8.45.6) । ऋग्वेद हमें मन को स्थिर कर उसे परमात्मा की ओर प्रेरित करने को कहता है । इस प्रकार स्थिर चित्त द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करना ही 'योग' है । योग हमें अपने अस्तित्व का ज्ञान प्रदान करता है । महान दार्शनिक ओशो ने योग को पारिभाषित

करते हुए कहा है ''योग एक अस्तित्व प्रयोग है'' । ओशो अस्तित्व को सत्य के साक्षात्कार से जोड़ते हुए कहते हैं कि ''योग का अर्थ है–सत्य का साक्षात्कार, जैसा वह है''।

6. समस्त बाह्य प्रपंचों से मुक्त होकर मन को आत्माभिमुख करने का प्रयास और मन की अन्तरनिहित शक्ति को गतिमान करना जिससे कार्यों में लय प्रकट हो, को योग कहा जा सकता है । कार्यों का यह लय जीवन में आनन्ददायी संगीत का सृजन करता है । जीवन–संगीत की यह संस्कारित साधना–पद्धति ही 'योग' है । जीवन में संगीत भाव की उत्पत्ति के लिए सभी चिन्ताओं को त्यागना आवश्यक है । योगश्शास्त्र में कहा गया है ''**सर्वचिन्तापरित्यागो निश्चिन्तो योग उच्यते**'' अर्थात् जिस समय मनुष्य सब चिन्ताओं का परित्याग कर देता है उस समय उसके मन की लय अवस्था को योग कहते हैं । मन की लय अवस्था को कैसे प्राप्त किया जा सकता है ? मानव मन की इस चिन्ता को दूर करने के लिए भारतीय मनीषियों ने प्रकृति के समीप जाकर अध्ययन और चिन्तन किया । चिन्तन–मनन से मनीषियों ने जाना कि समस्त जीवों में एक ही सत्ता विद्यमान है । प्रत्येक जीव सत्य को प्रकट करने के लिए अलग–अलग साधनों के द्वारा साधना करता है । सत्य उद्घाटन के लिए संसार के श्रेष्ठतम जीवन 'मानव' ने आत्म–साक्षात्कार के लिए जिस मार्ग को प्रतिपादित किया उसे हम योग के नाम से जानते हैं ।

7. ऋग्वेद में एक स्थान पर उल्लेख आया है कि काम एक मानसी शक्ति है । यह मन का **रेतस** है । यह सर्वप्रथम हृदय में स्पन्दित होता है यथा––''**कामस्तदग्रे समवर्तताधि, मनसो रेतः प्रथमम् यदासीत् । सतो बन्धुमसति निरविन्दम्, हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा**''। योग के वैज्ञानिक ऋषियों ने जीव की प्रथम मानसी शक्ति से उत्पन्न आनन्द को देखा तो पाया कि यह आनन्द तो क्षणिक है । यदि हम जीवों के आनन्द सृजन की विशिष्ट विधि को समेकित कर लें तो परमानन्द की प्राप्ति हो सकती है । जीवों के इसी प्रथम स्पन्दित काम–ऊर्जा को उर्ध्वमुखी करने हेतु महर्षि याज्ञवल्क्य ने कहा है **''इज्याचारदमाहिंसादानस्वाध्यायकर्मणाम्',' अयम् तु परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम्**'' अर्थात यज्ञाचार, दम, अहिंसा, दान, स्वाध्याय आदि धर्मों से योग के द्वारा आत्मदर्शन करना ही परम धर्म है । इस प्रकार जीवों में व्याप्त आनन्द को सकारात्मक दिशा में नियोजित करने के लिए आदेश दिया गया है । ऋषियों का यह आदेश **बृहदारण्यक** के **मैत्रेय ब्राह्मण** में ''**आत्मा वा अरेदृष्टव्यः स्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः**'' के रूप में आया है अर्थात् आत्मा का दर्शन श्रवण, मनन और निद्ध्यासन से करना चाहिए । इस प्रकार श्रवण, मनन व सदृश्य निद्ध्यासन को आत्म साक्षात्कार का साधन माना गया है । योग को विभिन्न धर्म–शास्त्रों में विभिन्न रूपों में पारिभाषित किया गया है । कठोपनिषद के अनुसार **''ताम् योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रिय धारणाम्, अप्रमतस्तदा भवति योगो ही प्रभावप्ययौ''** अर्थात् इन्द्रियों की स्थिर धारणा (संयम) को ही योग कहते हैं, इसके साधन से मुमुक्षु अप्रमत्त होता है और उसका योग ईष्टोत्पादक और अनिष्टनिवारक होता है । **योगवाशिष्ठ्य** के अनुसार 'योग' शब्द का अर्थ है–संसार सागर पार करने की युक्ति । श्रीमद्भागवत्गीता के अनुसार **''योगः कर्मसु कौशलम्**'' अर्थात कर्मो में कुशलता ही योग है । अन्यत्र ''**तम् विद्यात् दुःख संयोग वियोगम् योग संज्ञिज्ञम्**'' अर्थात् दुःख संयोग से वियोग या अलग हो जाना ही योग है । श्रीमद्भागवत्गीता में ''**सुखे दुःखे समेकृत्वा समत्वम् योग मुच्यते**'' अर्थात सुख–दुःख में समभाव में रहना ही योग है । सांख्य मत के अनुसार ''**पुंप्रकृत्योरवियोगेऽपि योग इत्याभिधीयते**'' अर्थात् पुरूष व प्रकृति में अलगाव स्थापित कर दोनों का वियोग कर पुरुष का स्वरूप में स्थित होना योग है । महर्षि पतंजलि के अनुसार **''योगश्च चित्तवृत्ति निरोधः**'' अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना तथा **''तदा द्रष्टुःस्वरूपेऽवस्थानम्**'' अर्थात् अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित होना ही योग है । इस

प्रकार ऋग्वेद से लेकर महर्षि पतंजलि तक येाग विद्या का विस्तार सांख्य योग, ज्ञान योग, कर्मयोग, हठयोग, लय योग, भक्तियोग, मन्त्र येाग, श्रीकुण्डलिनी शक्तियोग एवं ध्यानयोग आदि के रूप में विकसित होता रहा । महर्षि पतंजलि ने पूर्वोक्त सभी योग सिद्धान्तों को परिष्कृत कर सूत्रों में निबद्ध किया जिसे हम 'योगसूत्र' के रूप में जानते हैं । महर्षि पतंजलि ने जिस योग विद्या का प्रतिपादन किया उसे 'राजयोग' भी कहा जाता है । राजयोग प्राप्ति के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि आठ निर्देशों का पालन करना होता है । इसी कारण इसे 'अष्टांग योग' के नाम से जाना जाता है । योग के सभी प्रकारों में विशुद्ध वैज्ञानिक पद्धति 'अष्टांग योग' की है । इसलिए महर्षि पतंजलि को ही योग का जनक कहा जाता है । मानव मन की जिज्ञासा और अनुसंधान के द्वारा जिस विज्ञान का आविष्कार हुआ उसे हम योग के रूप में जानते हैं जो समग्र रूप में हमें स्वस्थ कर सभी प्रकार से कल्याण का मार्ग प्रशस्त करता है ।

*****